RJPP, Vol. 15, No. 3, 2017, ISSN (P) : 0976-3635, (e) :2454-3411, Impact Factor 4.0000 (ICRJIFR)
UGC Approved Journal No. 43279

राष्ट्रीय नवोत्थान की दिशा

डॉ0 राजनारायण शुक्ल
एस0 डी0 कॉलेज गाजियाबाद

सारांश लम्बे समय की परतंत्रता के बाद 1947 में हम स्वतंत्र हुए। हमें एक खंडित तथा क्षत–बिक्षत देश मिला। इसके पुनर्निर्माण का दायित्व हम सभी भारतवासी आबाल, वृद्ध नर–नारी, किसान–मजदूर, छात्र–शिक्षक सभी का था। पर तत्कालीन नेताओं ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य में पूरे देश को साथ नही लिया, न ही देश की इच्छा जानने का प्रयत्न किया। पूंजीवाद और साम्यवाद से प्रभावित होकर दोनों का मिश्रित गड़बड़झाला देश पर थोप दिया। फलतः हम पिछड गए। भारत का पुनर्निर्माण, भारत की चिति के अनुसार होना चाहिए था। हम एक आध्यात्मिक देश है। चारित्रिक शुद्धता, नैतिक दृढता सामाजिक समन्वय हमारे लिए नारा नही, जीवन का अंग रही। यूरोपीय जीवन शैली की नकल ने हमें उससे भटका दिया । यह राष्ट्र बहुत प्राचीन है। इसे मात्र राजनीतिक इकाई समझना भूल है। राष्ट्र भूभाग के साथ एक ऐसे जन–समूह से मिलकर बनता है जिसने सैकड़ों वर्षो के परिश्रम, तपस्या से देश को एक नैतिक पहचान दी हो उसके साथ माता–पुत्र का सम्बन्ध, विकसित किया हो। हमें अब अपने देश का पुनर्निर्माण भारतीय मान्यताओं, राष्ट्रीय आवश्यकताओं तथा वैज्ञानिक सोच के साथ करना है तभी यह देश परम वैभव को प्राप्त करेगा तथा विश्व को नेतृत्व देगा।

महत्वपूर्ण शब्द–राष्ट्र, विश्व, पुनर्निर्माण, विकास सांस्कृतिक, राजनीतिक, वैभव

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ0 राजनारायण शुक्ल

राष्ट्रीय नवोत्थान की दिशा

RJPP 2017, Vol. 15, No. 3, pp. 99-105, Article No. 15(RP592)

***Online available at** : http://anubooks.com/?page_id=2004*

हमारा देश 1947 में स्वतंत्र हो गया। ब्रिटिश शासन से मुक्त होने के उपरान्त हम एक राजनैतिक इकाई के रूप में विश्व के फलक पर स्थापित हो गए। वर्षो की परतंत्रता के बाद स्वतंत्र होने पर इस पर्व को हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। परन्तु उसी समय देश में एक त्रासदी भी घटित हो रही थी। यह विशाल राष्ट्र दो टुकड़ों में विभाजित हो गया था। जो हिस्सा पाकिस्तान में चला गया था, वहॉ से हजारों भारतीय बेघर किये जा रहे थे। उन पर अमानवीय अत्याचार हो रहे थे। स्वतंत्रता की एक बड़ी कीमत हमने चुकाई थी। एक भारत राष्ट्र दो राजनीतिक इकाईयों में विभाजित हो गया। हालांकि इससे पहले भी अपनी निर्बलता और परतंत्रता की स्थिति में श्रीलंका, बर्मा, भूटान, नेपाल समय–समय पर हमसे अलग होते रहे। उन्होंने अपनी स्वतंत्र राजनीतिक इकाईयॉ स्थापित कर ली। लेकिन एक बड़े भूभाग के रूप में शेष भारत ने भी अन्ततः लम्बे संघर्ष के बाद स्वतंत्रता प्राप्त की और इसके साथ ही राष्ट्र जागरण का एक दीर्घावधि चलने वाले कार्य का एक ऐसा चरण समाप्त हुआ जिससे भारत चिति को विस्तार का एक नया आकाश मिला। और इसके साथ ही भारत के राजनैतिक नेताओं, अपनी–अपनी तरह से भारत की स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन कर रहे क्रान्तिकारियों, राष्ट्रवादियों, कवियों, समाजसेवियों आदि महापुरूषों पर भारत के पुनर्निर्माण की महती जिम्मेदारी आ पड़ी सभी अपने राष्ट्र के उत्थान के लिए तत्पर हो रहे थे। सभी चाहते थे कि भारत राष्ट्र विश्व के अग्रणी देशों में अपनी प्रमुख भूमिका बनाये और एक सक्षम समर्थ राष्ट्र का दर्जा हासिल करे। एक बहस छिड़ गई कि भारत को आगे बढाने के लिए कौन सा, या कौन–कौन सा रास्ता अपनाया जाए।

महात्मा गॉधी का विचार था कि भारत की प्राचीन ग्राम स्वराज की परिकल्पना को अब मूर्त रूप दिया जाने का समय आ गया है। स्वदेशी भावना को भी अब साकार करना चाहिए। आचार्य विनोबा भावे सर्वोदय का विचार दे रहे थे। भारतीय संस्कृति का पोषक वर्ग भारत की परम्पराओं और आवश्यकताओं के आधार पर आगे बढना चाहता था। पर पूंजीवादी मस्तिष्क से विचार करने वाले नेहरू ने जी समाजवाद से प्रभावित होकर एक नया मिश्रित नेहरूवियन मॉडल भारत के विकास के लिए लागू किया जो अन्ततः बुरी तरह फेल हुआ। कई विचारकों ने इसे राष्ट्र निर्माण का नाम दिया और कहा कि हमें राष्ट्र का निर्माण करना है। उनकी दृष्टि में भारत एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में है और हमें इसे राष्ट्र बनाने की दिशा में चलने के साथ ही इसके विकास की प्रक्रिया को भी आगे बढाना है, निश्चित ही ऐसे लोग न तो भारत की अक्षुण्ण धारा से परिचित थे और न ही राष्ट्र की कल्पना से। या फिर वह राष्ट्र और राज्य के अन्तर को नहीं समझ पा रहे थे या फिर वे यूरोपीय विचार से प्रभावित थे। भारत 1947 में राष्ट्र नहीं बना, हॉ वह एक स्वतंत्र राजनीतिक इकाई के रूप में जरूर अस्तित्व में आ गया। पर वह एक प्राचीन राष्ट्र है। इसके संकेत हमें हमारे प्राचीन साहित्य में कई स्थानों पर मिलते हैं। राष्ट्र और राज्य के अन्तर को स्पष्ट करते हुए पं0दीन दयाल उपाध्याय राष्ट्र जीवन की दिशा नामक पुस्तक में राष्ट्र और राज्य पर विचार करते हुए लिखते हैं।" राष्ट्र एक जीवमान इकाई है। वर्षों–शताब्दियों तक लम्बे कालखण्ड में इसका विकास होता हैं। किसी निश्चित भू–भाग में निवास करने वाला मानव समुदाय जब उस भूमि के साथ तादात्म्य का अनुभव करने लगता है, जीवन के विशिष्ट गुणों को आचरित करता हुआ समान परम्परा और महत्वाकांक्षाओं से युक्त होता है। सुख–दुख की समान स्मृतियॉ और शत्रु–मित्र की समान अनुभूतियॉ प्राप्त कर परस्पर हित सम्बन्धों में ग्रंथित होता है, संगठित होकर अपने श्रेष्ठ जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए

सचेष्ट होता है, और इस परम्परा का निर्वाह करने वाले तथा उसे अधिकाधिक तेजस्वी बनाने के लिए महान तप, त्याग, परिश्रम करने वाले महापुरूषों की श्रृंखला निर्माण होती है तब पृथ्वी के अन्य मानव समुदायों से भिन्न एक सांस्कृतिक जीवन प्रकट होता है। इस भावात्मक स्वरूप को ही राष्ट्र कहा जाता है। जब तक यह राष्ट्रीय अस्मिता बनी रहती है। इसके क्षीण होने से राष्ट्र नष्ट हो जाता है[1]।"

राष्ट्रीय समाज में अगर कोई अव्यवस्था होती है कोई जटिलता निर्माण होती है तो व्यवस्था निर्माण करने के लिए, सुव्यवस्था बनाने हेतु नियम निर्माण करने के लिए राज्य का उदय होता है। इसी प्रकार राष्ट्र और देश बनता है। अर्थात देश एक दृश्यमान सत्ता है। जबकि राष्ट्र अदृश्यमान सत्ता है। राष्ट्र किसी देश की आत्मा होती है। यद्यपि वह देश से अधिक चिरन्तन और व्यापक है। हालांकि हम देश और राष्ट्र को समानार्थी मानकर ही व्यवहार करते हैं। राज्य एक राजनीतिक इकाई है, देश एक भौगोलिक इकाई है और राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है किसी देश अथवा राज्य में वहॉ के जन समुदाय की हजारों वर्षो की तपस्या के बाद राष्ट्र भाव का उदय होता है पर इसकी साधना निरन्तर करनी पड़ती है अन्यथा यह भाव नष्ट भी हो सकता है। यजुर्वेद मे ंराष्ट्र शब्द का उल्लेख इसी रूप में आया है–"वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः[2]।

अर्थात हम राष्ट्र को जाग्रत रखेगें। जब यह राष्ट्र भाव राजनीतिक इकाईयों की भिन्नता के बाद या राजनीतिक सत्ता नहीं होने के बाद भी वहॉ के मनीषियों, चिन्तकों द्वारा अनवरत जगाए रखी जाती है तो वह राष्ट्र जीवित रहता है। अन्यथा वह नष्ट हो जाता है। इसके कई उदाहरण हमारे सामने है। प्राचीन भारत में कई राजा थे उनकी स्वतंत्र राजनीतिक सत्ता थी। परन्तु पूरे भारतीय भूभाग में एक राष्ट्र के लिए आवश्यक तत्व की प्रधानता विद्यमान थी। गौ और गंगा के लिए एक समानभाव पूरे भारत में था। सामाजिक सांस्कृतिक व्यवहार एक जैसे थे। नैतिक आदर्शो और मानदंडों को मानने में सबका मन एक जैसा था। अर्थात सभी राज्यों में एक जैसा जन–समाज था। जिनका अपनी भारतभूमि के प्रति समर्पण और भक्ति अनन्य और अटूट थी। और सभी अपने को भारतीय मानते थे। वायुपुराण में वर्णित है–

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः[3]।

भारत भर में स्थिति नगरों में भ्रमण करना वे अपना सौभाग्य मानते थे–

अयोध्या–मथुरा–माया, काशी कॉची, अवन्तिका,
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैताः मोक्षदायिका।

परतन्त्रता के काल में यह राष्ट्रभाव जीवित रहा। यहॉ के संतों, विचारकों ने इसे जीवित रखा। ठीक इजराइल के निवासियों की तरह जिन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि राष्ट्र के लिए भूभाग की नही राष्ट्रभाव की आवश्यकता है। यहूदियों से अपना देश छिन गया सैकड़ों वर्षों तक वह विश्व भर में भटकते रहे पर उनके अन्दर का राष्ट्र जीवित रहा अन्ततः उन्होंने अपनी जिजीविषा के बल पर भूमि भी प्राप्त कर ली। इसके विपरीत एक राष्ट्र के रूप में, यूनान, रोम, और मिस्र आदि नष्ट हो गए। यद्यपि एक भूभाग और राज्य के रूप में वे अभी भी अस्तित्व में है। इसी राष्ट्र का पुनर्निर्माण करने का गुरूतर दायित्व हम पर आया है। राष्ट्र निर्माण इसलिए नहीं क्योंकि हम यह बता चुके है कि एक राष्ट्र के रूप में हम हजारों वर्षो से जीवित है और जाग्रत भी। हम एक नया राष्ट्र नहीं बना सकते। यह एक लम्बी प्रक्रिया है जो सृष्टि–निर्माण के साथ ही प्रारम्भ हो जाती है। मनुष्य जिस भूमि में जन्म लेता है तो वर्षो की प्रक्रिया के

बाद धीरे–धीरे उसे उस भूमि से लगाव उत्पन्न हो जाता है। भारतीय विचार के अनुसार यह लगाव या सम्बन्ध मॉ और पुत्र के समान होता है। 'माता भूमि पुत्रोडहं प्रथिव्या।' इसका लालन–पालन वही भूमि करती है। उसके व्यक्तित्व का निर्माण भी वही भूमि करती है। अतः भूमि से उसका अमिट सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इसीलिए हमने कहा राष्ट्र निर्माण नहीं हमें राष्ट्रीय पुननिर्माण करना है। पुननिर्माण क्यों करना है? क्या हमारे राष्ट्र में कोई विकृति आई क्या हमारे वैभव में कोई न्यूनता हुई? क्या हम अपने आदर्श से भ्रमित हुए? क्या हमारे सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, व्यवहारों में दोष उत्पन्न हुआ अथवा उनमें सुधार की आवश्यकता अनुभव हुई। तो कई कारणों से हम कहेगें हॉ ऐसा है। पहला कारण तो शाश्वत है कि प्रकृति परिवर्तनशील है और समाज को भी परिवर्तनशील होना चाहिए जो समाज समय के अनुसार बदलता नहीं वह नष्ट हो जाता है पर हमारा आधार नही बदलना चाहिए मूल आत्मा नहीं बदलनी चाहिए। परिष्कार निरन्तर होना चाहिए। इसलिए हम मानते है 'चिर पुरातन–नित्यनूतन' दूसरा कारण है हमारे हजारों वर्षों के राष्ट्र में एक छोर से दूसरे छोर तक तमाम अलग–अलग राजसत्ताओं के होते हुए भी एक समान विचार, समान मान्यताएॅ जीवन के प्रति समान दृष्टिकोण प्रवाहित होता रहा राष्ट्र का विकास उसकी अपनी प्रकषति से होता रहा। जिसे हम भारतचिति कहते है। परन्तु दुर्भाग्यवश इस प्रवाह में व्यवधान पड़ा एक ऐसा व्यवधान जिससे भारत की आत्मा परिचित नहीं थी। और जो उसके अनुकूल भी नही था। लम्बे समय तक भारत की राष्ट्रीय चेतना इन व्यवधानों के विरूद्ध संघर्ष करती रही। जिस प्रकार शरीर में विषाक्त तत्वों के प्रवेश होने पर पूरा शरीर उन्हें हटाने हेतु एक हो जाता है। उसी प्रकार यह देश भी एक हिंसक, अनैतिक सत्ता से लड़ने में अपनी शक्ति लगाता रहा। जब यह देश सम्भ्ल ही रहा था। तभी 1817 में मराठों की पराजय के बाद इसे एक और झटका लगा। परन्तु इस देश के राष्ट्रभाव ने पूर्णतया पराजित होने से इन्कार कर दिया। हमारे देशवासियों में अपनी भारत भूमि के प्रति श्रष्द्धा का भाव अनवरत बना रहा। बिखरी हुई शक्तियॉ एकत्रित होने का प्रयास करती रही और अन्दर ही अन्दर राष्ट्र जागरण का कार्य चलता रहा। जिसके फलस्वरूप 1947 में एक विभाजन की त्रासदी स्वीकार करते हुए हमने स्वतन्त्रता पा ली। परन्तु इतने कालखण्ड के व्यवधान ने हमें हर ओर से निर्बल बना दिया था। विरोधियों के दुष्प्रचार और दुष्प्रयासों ने हमारी हर ताकत को अपना निशाना बनाया। सांस्कृतिक रूप से हम जितना उन्नत थे वहॉ भी हमारा हा्स हुआ। हम छुआछूत अन्धविश्वास और कुरीतियों को धर्म मान बैठे। एक कथा ऐसी आती है कि एक वकील ने एक दुर्दान्त डाकू का मुकदमा लड़ा। जिस आरोप में मुकदमा था यह उसमें निर्दोष था। अतः छूट गया। डाकू ने वकील का धन्यवाद करते हुए कहा।

"आपकी कृपा से मैं छूट गया वकील साहब, मैंने कई डाके डाले परन्तु एक बात अवश्य है, मैं कभी अपने धर्म से नही डिगा। वकील साहब आश्चर्यचकित हुए, बोले कैसे?– उसने कहा जनेÅ की कसम खाकर सच कहता हूॅ कि मैंने कभी किसी का छुआ भोजन नही किया।" उसके लिए किसी का छुआ न खाना ही धर्म हो गया था। कोई दिन में दस बार अपवित्र होने पर दस बार नहाने को धर्म मानने लगा था। इस प्रकार के कई अन्धविश्वासों, धर्म के प्रति भ्रामक बातों से हम वास्तविक धर्म से भटक गए। पर्दा, प्रथा, बालविवाह, अशिक्षा आदि से हमारे सांस्कषतिक और सामाजिक मूल्यों का हा्स हुआ। विज्ञान की उपेक्षा हुई, सामाजिक एकता का भाव नष्ट होने लगा। हम जातियों में बट गए। अर्थ व्यापार आदि में भी हम पीछे हो गए। इसका कारण यह नहीं था कि हम जानबूझकर उन्नतशील मार्ग पर नही चल पाए।

अपितु यह कहना अधिक उपयुक्त है कि हमारी सारी ताकत बाहरी शत्रुओं से अपनी रक्षा करने में लगी रही।

स्वतंत्रता के बाद भी हमें भारत के भविष्य का जो मार्ग चुना जाना अपेक्षित था हमने नहीं चुना। अर्थ के क्षेत्र में, शिक्षा के क्षेत्र में व्यापार के क्षेत्र में रक्षा के क्षेत्र में जिन–जिन क्षेत्रों में राजनैतिक सत्ता का दखल था। उन क्षेत्रों में अपनी एकांगी और भ्रमित सोच से देश को एक समर्थ राष्ट्र बनाने में हम कहीं चूक गए। राष्ट्रीय पुननिर्माण का एक अवसर फिर हमारे सामने है। पर हमें भली भांति यह विचार कर लेना पडेगा कि आखिर हमें कैसा राष्ट्र चाहिए? क्या हमें पूरी तरह वैदिक युग में चले जान चाहिए? जिसे हम स्वर्ण काल कहते है और जहॉ न कोई ऊॅच–नींच भी न छूआछूत था। न कोई ईर्ष्या या कलुष था। सब सभी की चिन्ता करते थे। लेकिन तब भौतिक साधन इस प्रकार तो न थे तो क्या हम इन सबसे मुॅह मोड़ सकते हैं? तो हमें बिल्कुल आधुनिक भारत चाहिए। एक ऐसा भारत जिसमें वशिष्ठ और विश्वमित्र, चाणक्य और चरक, बुद्ध और महावीर, आचार्य शंकर और कम्बन, कबीर और तुलसी विवेकानन्द और गान्धी के लिए कोई जगह न हो। क्या हम यूरोप की तर्ज पर फ्रांस या इटली की तरह बन जायें। हम आधुनिकता से मुॅह नही मोड़ रहे न ही उससे भयभीत है। पर यह तो विचारणीय है ही कि इसका हमें क्या मूल्य देना पडेगा और हमें प्राप्त क्या होगा? हमारे देश की प्राचीन धरोहर, नैतिकता अध्यात्म दर्शन आदि के समान आधुनिकता क्या कोई शाश्वत मूल्य है या वह मूल्य है ही नही? क्यों हम अपने मूल्यों, आदर्शों के लिए बार–बार प्राचीन भारत का मुॅह देखते है। राष्ट्रकवि दिनकर ने लिखा है " आधनिकता क्या है? और भारत धर्म के किन मूल तत्वों से उसका विरोध पड़ता है? क्या पूर्ण रूप से आधुनिक बनने के प्रयास में हम भारत धर्म के इन मूलतत्वों का बलिदान करेंगे अगर हॉ, तो राजा राममोहन राय, विवेकानन्द और गांधी के इस स्वप्न का क्या बनने वाला है कि हमें भारतीय परम्परा के शिव अंश को कायम रखना हैं, हमें अपनी परम्परा के सर्वश्रेष्ठ तत्वों का पाश्चात्य सभ्यता के उन तत्वों से एकाकार करना है, जो उस सभ्यता के सर्वश्रेष्ठ अंश है[4]?"

पाश्चात्य जगत शरीर को अधिक महत्व देता है। इसलिए वहॉ का चिकित्सा शास्त्र सर्जरी में अधिक उन्नति कर गया जबकि कायचिकित्सा में उसे इतनी सफलता नहीं मिली। उसने चेचक मलेरिया, राज्ययक्ष्मा को तो उन्मूलित कर दिया परन्तु रक्तचाप, मधुमेह, अनिद्रा आदि का स्थायी समाधान वह नही खोज पाया। भारत अपने शरीर के साथ ही मन बुद्धि तथा आत्मा का भी परिष्कार चाहता है। तभी तो हम आनन्दमय हो पाऐगें, चिदानन्द की कामना कर पाऐगें। इस हेतु हमें भारतीय विचार के अनुसार पुरूषार्थ चतुष्टय का विचार करना होगा। हमारे यहॉ गरीबी को पाप कहा गया और कहा कि 'बुभुक्षित किं न करोति पापम्' इसलिए अर्थ सर्वाधिक महत्वपूर्ण है परन्तु ऐसा अर्थ जो धर्मपूर्वक अर्जित किया गया है और उसका उपयोग भी धर्मपूर्वक हो अर्थात स्वयं के परिश्रम से धन का सम्पूर्ण उपयोग अपने हित में करना अधर्म है उसे बॉटकर उपभोग करना, दान करना, धर्मपूर्वक उपयोग है। यही राजनीति के लिए भी है, धर्म से रहित राजनीति अनर्थकारी है वह सेवा नहीं केवल लूट का साधन बनेगी। धर्मपूर्वक की जाने वाली राजनीति सामाजिक परिवर्तन और कल्याण का कारण बनेगी। व्यक्ति अर्थोपार्जन के लिए तभी सन्नद्ध होगा जब उसमें कामनाऍ होगी अन्यथा वह समाज से विरक्त हो जाएगा इसलिए धर्म और अर्थ के साथ कामनाओं का भी महत्व है परन्तु धर्म सबका आधार है धर्म रहित कामनाऐं समाज में अनैतिकता और अराजकता का प्रसार करेंगी। अन्तिम पुरूषार्थ मोक्ष है इसके बाद कुछ पाना शेष नहीं रहता।

कामनाओं का निःशेष हो जाना ही मोक्ष है परन्तु तीनों पुरूषार्थ पर चलते हुए मोक्ष तक पहुचना ही श्रेष्ठ हैं। खण्ड–खण्ड विचार करना एकांगी विचार होगा और अनर्थ की सृष्टि करेगा। अंग्रेजों से हमें क्षत–विक्षत और खंडित राष्ट्र मिला। तब तक इसी बीच विश्व में उभरे कई अवसरों से हम चूक गए थे विज्ञान में हम पिछड़ चुके थे, औद्योगिक क्रान्ति में हम केवल मजदूर बनकर शामिल हुए, कला संगीत, अध्यात्म, सम्पन्नता सभी क्षेत्रों में हमें इस परतन्त्रता से हानि उठानी पड़ी। हमें अपनी उन उपलब्धियों को तो पाना ही है जिनमें हम बहुत पहले आगे थे और फिर पिछड़ गए। विकास के आधुनिक मानदंडों में भी महारत हासिल करनी है। चिकित्सा के क्षेत्र में, विज्ञान के क्षेत्र में, खगोल शास्त्र के क्षेत्र में, कृषि में, उद्योगों में हमें अपनी भरपाई करनी है। साथ ही कला संगीत, शिक्षा आदि के क्षेत्र में भी हमें अपने पुराने वैभव को प्राप्त करना हैं। भारत अपनी आर्थिक समृद्धि के कारण सोने की चिड़िया कहा जाता था, हमें पुनः एक समृद्ध राष्ट्र बनकर खड़े होना है। जो चुनौती भारत को 1200 ई0 में मिली थी। वही चुनौती आतंकवाद के रूप में पुनः हमारे सामने हैं। तब हम अपनी जिन कमजोरियों से पराजित हुए। अब उन कमजोरियों को दूर करना है। एक होकर आतंकवाद का डटकर मुकाबला करना है। भारत युवाओं का देश बना है पर ये युवा खान–पान में गम्भीर रासायनिक मिलावट–अशुद्धता आदि के कारण गम्भीर बिमारियों के शिकार हो रहें है। ऐसा समाज में नैतिक गिरावट से ही रहा हैं। मेघा होने के बाद भी अवसर न मिलने से मानसिक अवसाद से ग्रस्त है। हमें इस पर तत्परता से विचार कर शीघ्रातिशीघ्र इन पर विजय प्राप्त करने की कार्ययोजना बनानी होगी, जिससे हम सर्वाधिक युवा देश की अधिकाधिक ऊर्जा का इस्तेमाल देश के पुनर्निर्माण के काम के लिए कर सकें और उसे परम वैभव तक पहुंचा सकें। सामाजिक असमानता और राजनीतिक विद्वेष अभी भी एक बड़ी समस्या बने हुए है। अपने राजनैतिक उददेश्यों की पूर्ति के लिए समाज में विद्वेष फैलाने का कार्य अभी जारी हैं। वामपंथी और छद्म धर्मनिरपेक्ष शक्तियॉ मुसलमानों को राष्ट्रर्निर्माण के पुनीत कार्य में हिन्दुओं के साथ मिलकर खड़े होने से रोक रही है। एक विदेशी भाषा बोलने में हम गर्व करते है, हमें अपनी राष्ट्र की भाषा पर गौरव नही है। ऐसे तमाम विषय है। जिनके लिए हमें अभी अथक प्रयास करने होगें। जनता जाग चुकी है वह अपने देश के हित में फैसले लेना सीख चुकी है। देश विरोधी ताकतों के बहकावें में आने से बचने की कला उसे आ गई है। यही समय है। जब इस देश के शासक, और जनता, किसान और अधिकारी, छात्र और शिक्षक मजदूर और मालिक, महिला और पुरूष युवा और वृद्ध उत्तर और दक्षिण यहॉ तक कि सवा सौ करोड़ देशवासियों को इस महत् कार्य में लगना है। धीरे–धीरे अब यह स्पष्ट होने लगा है कि अमेरिका, रूस अथवा चीन विश्व को नेतृत्व देने में सक्षम नही है वे सम्भवतः ऐसा करने की मानसिकता भी नहीं रखते। अमेरिका संकुचित होकर केवल अपने देश के लिए संसाधन एकत्रित कर रहा है। रूस अपने हितों की लडाई करते हुए विस्फोटक स्थिति की ओर जा रहा है। चीन अपनी साम्राज्यवादी मानसिकता के कारण पूरे विश्व को आंतकित करते हुए अधिकार जमा रहा है। ऐसे में शेष विश्व को भारत से ही एक आशा की किरण दिखाई देती है। जो अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर पूरे विश्व को नेतृत्व दे सकता है। भारत की नैतिक दृष्टि इसका बड़ा आधार हैं। दुनियॉ के लिए उसकी सोच समन्वयवादी है और यही सोच विश्व को एक रखते हुए शांति की स्थापना कर सकती है। इसके लिए भारतीयों का अपनी सोच में दृढता लानी होगी। 'एक देश एक जन' के रूप में देश को आगे बढाना होगा। अध्यात्म हमार आधार होगा। चरित्र हमारी पूंजी हागी। और आत्म विश्वास

हमारा सम्बल होगा। और तब हम राजनैतिक नहीं, सांस्कृतिक विजय के रथ पर सवार भारत माता का ध्वज सारे विश्व में फहराता देखेगें।

संदर्भ

01– उपाध्याय दीनदयाल राष्ट्रजीवन की दिशा पृष्ठ–96 सुरूचि प्रकाशन।

02– यजुर्वेद वेदव्यास गीताप्रेस– 48.6

03– वायुपुराण, वेदव्यास, डायमंण्ड बुक डिपो– पृष्ठ–201

04– दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन पृष्ठ–203